संपादकीय

परिवर्तन संसार का नियम है । इस नियम का पालन प्रकृति भी करती है और समाज भी, जहाँ प्रकृति का परिवर्तन व्यापक होता है वहीँ समाज का संकुचित । लेकिन आज के परिवेश में जो भूमंडलीकरण का दौर चल रहा उसे व्यापक परिवर्तन की श्रेणी में रखा जा सकता है, क्योंकि इसका प्रभाव किसी समुदाय, समाज या राष्ट्र-राज्य की परिधि में नहीं है । भूमंडलीकरण ने लगभग सारी सीमाओं को लाँघकर संसार के कोने-कोने में जाकर प्रत्येक व्यक्ति तक को प्रभावित किया है । हालाँकि इसमें भी अच्छाई और बुराई का समावेश है । वैसे इसका अभीतक और कोई विकल्प भी नहीं है । भूमंडलीकरण का सबसे मजबूत पक्ष, इसका मायावी होना है, जिसे आर्थिक-माया का नाम दिया जा सकता है । आर्थिक-माया इसलिए कि इसका 'ब्रह्मास्त्र' अर्थ है और अर्थ के बिना मानव जीवन व्यर्थ (भौतिक-जीवन के विशेष संदर्भ में) है । हम इसका विरोध करते हुए भी इसके साथ हैं । अभय कुमार दूबे ठीक ही कहते है – 'भूमंडलीकरण एक बेहद ताकतवर परिघटना है जो सब कुछ बदल दे रही है । वह दोनों तरफ से बदलती है यानि वह हालत को अपने सार्वभौमिक सांचे में तो ढालती ही है उसके प्रति उसके विरोधियों की प्रतिक्रिया भी एक खास तरह के परिवर्तन को जन्म देती है जो शुरु में भूमंडलीकरण के खिलाफ लगता है, पर अंतिम विश्लेषण में उसकी संरचनाओं की मदद करता पाया जाता है' । (भारत का भूमंडलीकरण, वाणी प्रकाशन दिल्ली, संस्करण-२००८, पृष्ठ-२७)

'ऐसी परिस्थिति में 'परिवर्तन' नाम से पत्रिका निकालकर भला मैं क्या परिवर्तन कर सकता हूँ' ? मेरे मन में यह सवाल बार-बार तबतक घूमता रहा, जबतक कि मैं युवा कवि प्रेमचन्द्र 'नंदन' की कविता की ये चार पंक्तियाँ नहीं पढ़ा था:

आजादी के इतने सालों बाद भी / जिनकी रोटी / छोटी होती जा रही है
और काम पहुंच से बाहर / जिनके छोटे-छोटे सपने / इसमें ही परेशान हैं
कि अगली बरसात / कैसे झेलेंगे इनके छप्पर / भतीजी की शादी में
कैसे दें एक साड़ी / कैसे खरीदें / अपने लिए टायर के जूते ।

मेरा अनुमान है कि कविता की इन चार पंक्तियों को पढ़ने के बाद आप भी हमसे काफी हद तक सहमत होंगे कि निसंदेह आज इस परिवर्तन की आवश्यकता है । किसी भी समाज में या उसकी व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए साहित्य, सिनेमा और मीडिया से बड़ा माध्यम क्या हो सकता है । इस दृष्टि से पत्रिका का नाम 'परिवर्तन' रखना हमे काफी हद तक सार्थक लगा ।

खैर ! आज पत्रिका का प्रवेशांक आपके सामने है । इस अंक में पहला आलेख प्रभुदयाल मिश्र द्वारा लिखा गया 'ईशावास्य : रामचरित मानस का आधार दर्शन' है । तुलसीकृत रामचरित मानस के दार्शनिक आधारों की खोज करते हुए

प्रभुदयाल मिश्र ने इसे विशिष्टाद्वैत परक रचना माना है। यह शोध-परक लेख अगस्त माह में मारीशस में संपन्न अंतर्राष्ट्रीय रामायण सम्मलेन में प्रस्तुति पर आधारित है। दूसरे आलेख में डॉ. मजीद मिया ने साहित्य और संस्कृति के अंतर्संबंधों पर प्रकाश डाला है। तीसरे आलेख में आरसी चौहान ने युवा कवियों के कविता का एक तरह से इतिहास लिखने का प्रयास किया है। 'नयी इबारत लिखते समकालीन कविता के युवा स्वर' शीर्षक से लिखा यह लेख नए और युवा कवियों के लिए किसी 'सम्मान' से कम नहीं समझा जाना चाहिये। मीडिया और सिनेमा स्तम्भ में आशीष कुमार ने 'सत्तर के दशक (1970-1979) के हिंदी फिल्मों में स्त्री की दुनिया' का विश्लेषण करते हुए हिंदी सिनेमा में स्त्री की दशा और दिशा पर प्रकाश डाला है।

अन्य शोध-परक आलेखों में राम चन्द्र पाण्डेय का 'अज्ञेय की काव्य संवेदना और असाध्यवीणा', धीरेन्द्र सिंह का 'समकालीन कविता में समतामूलक परिदृश्य', रेखा सैनी का 'नरेश मेहता के प्रबंध काव्यों में मानवीय संवेदना: आधुनिक सन्दर्भ', सुरजीत सिंह वरवाल का 'भूमंडलीकरण के संदर्भ में भारत और हिंदी' एवं अखिलेश गुप्ता का अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से जुड़े प्रश्न' जैसे शोध-पत्र हिंदी साहित्य के भविष्य को उज्ज्वल घोषित करते हैं।

कहानी स्तम्भ के अंतर्गत जहाँ डॉ. लवेश दत्त की कहानी 'श्यामा' स्वार्थी मनुष्य के ढोंग का पोल खोलती है। वहीँ कविता स्तम्भ में विक्रांत कुमार की कवितायेँ विद्रोही रूप अख्तियार करती हैं। देवेन्द्र आर्य की कविता 'चर्चा में' एक व्यंग्य कविता है। ऋषि गुप्ता ने भी अपनी कविता के माध्यम से शब्दों का खेल समझया है। इस अंक में दो पुस्तक समीक्षा को भी सम्मिलित किया गया है। पहली निर्मला जैन की आत्मकथा 'जमाने में हम' जिसकी समीक्षा एम.एम.चंद्रा ने लिखा है और दूसरी 'क्योंकि औरत कट्टर नहीं होती' डॉ. शिखा कौशिक 'नूतन' द्वारा लिखा गया लघु कथा संग्रह, इसकी समीक्षा आरिफा एविस ने की है।

अंत में -

पत्रिका को शुरू करने में कई लोगों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से महत्वपूर्ण योगदान रहा शायद आपके बिना मैं यह कभी नही कर पाता। आप सभी को हृदय से आभार और बधाई।

आपके महत्वपूर्ण सुझाव की आकांक्षा में –

महेश सिंह